भारतीय ज्ञान परम्परा और प्राचीन संस्कृत अभिलेखों की प्रासंगिकता

लक्ष्मी
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110007

डॉ.उमाशंकर
सह-आचार्य, संस्कृत
विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110007

भारतीय ज्ञान परम्परा विश्व की सबसे प्राचीन और समृद्ध परम्पराओं में से एक है। यह परम्परा वेदों, उपनिषदों, पुराणों, और अन्य प्राचीन ग्रंथों पर आधारित है। संस्कृत अभिलेख इस परम्परा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, जो हमें प्राचीन भारतीय ज्ञान, संस्कृति, और सभ्यता के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं।

भारतीय ज्ञान परम्परा के मुख्य तत्व

भारतीय ज्ञान परम्परा में कई महत्वपूर्ण तत्व हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख हैं:

1.वेद: वेद प्राचीन भारतीय ज्ञान के सबसे महत्वपूर्ण स्रोत हैं। ये ग्रंथ धर्म, दर्शन, और विज्ञान के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं।

2.उपनिषद: उपनिषद वेदों के बाद के ग्रंथ हैं, जो आत्मा, परमात्मा, और जीवन के उद्देश्य के बारे में चर्चा करते हैं।

3.पुराण: पुराण प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति, और सभ्यता के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं।

4.दर्शन: भारतीय दर्शन में विभिन्न विचारधाराएं हैं, जैसे कि न्याय, वैशेषिक, और वेदांत। ये विचारधाराएं जीवन के उद्देश्य, आत्मा, और परमात्मा के बारे

में चर्चा करती हैं।

संस्कृत अभिलेख भी भारतीय ज्ञान परम्परा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। ये अभिलेख हमें एक प्राचीन भारतीय ज्ञान, संस्कृति, और सभ्यता के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं।

भारतीय ज्ञान परम्परा का महत्व:-भारतीय ज्ञान परम्परा का महत्व इस प्रकार है:

1.ज्ञान का स्रोत: भारतीय ज्ञान परम्परा हमें ज्ञान का एक समृद्ध स्रोत प्रदान करती है, जो हमें जीवन के विभिन्न पहलुओं के बारे में जानकारी प्रदान करता है।

2.सांस्कृतिक महत्व: भारतीय ज्ञान परम्परा हमारी संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो हमें हमारी विरासत के बारे में जानकारी प्रदान करती है।

3.आध्यात्मिक महत्व: भारतीय ज्ञान परम्परा में आध्यात्मिक ज्ञान का एक महत्वपूर्ण स्थान है, जो हमें आत्मा और परमात्मा के बारे में जानकारी प्रदान करता है।

अभिलेख का शाब्दिक अर्थ है'किसी वस्तु पर उत्कीर्ण लेख। अभिलेखों को उत्कीर्ण करने के लिए प्रायः शिलाएँ, पाषाण, धातु, मिट्टी अथवा लकड़ी के खम्भे पट्टिकाएँ, पात्र, ईंटें, शंख, हाथीदांत के फलक तथा अन्य वस्तुएँ उपयोग में लायी जातीं थीं। शिलाएँ उत्कीर्ण करने का प्रमुख आधार होने के कारण इनको'शिलालेख भी कहा जाता है। हमारे देश में विधिवत इतिहास लिखने की परम्परा बहुत कम रही, यही कारण है कि यह शिलालेख भारतीय इतिहास को जानने के लिए महत्त्वपूर्ण स्रोत बने। अभिलेखों के स्पष्टीकरण के पश्चात ही प्राचीन भारतीय श्रृंखलाबद्ध इतिहास प्रकाशित हो पाया। अभिलेख विश्वसनीय कालगणना के स्रोत तो हैं हि अनेक प्रामाणिक तथ्यों को भी हमारे समक्ष रखते हैं। यही कारण है कि प्राचीन भारत के इतिहास एवं संस्कृति को जानने में यह पुरालेख विशेष सहायक हैं। इन अभिलेखों के कारण ही प्राचीन भारत का इतिहास आधुनिक वैज्ञानिक स्तर पर भी प्रमाणिक सिद्ध हो सका है। ऐतिहासिकता के अतिरिक्त भी ये लेख प्राचीन भारत के अनेक विषयों पर प्रकाश डालते हैं जैसे प्राचीन भारत का भूगोल, यहाँ की संस्कृति, साहित्य,

आर्थिक एवं धार्मिक स्थितियाँ इत्यादि ।

अभिलेखों का ऐतिहासिक महत्त्व:

कर-व्यवस्था: प्राचीन अभिलेखों से हमें तत्कालीन कर सम्बन्धि जानकारी भी प्राप्त होती है। कर ग्रहण करने वाले कुछ पदाधिकारियों के पदों का भी उल्लेख है।'कर-संग्रह करने वाले अधिकारी के लिए'षष्ठाधिकृत अर्थात(छठे भाग का अधिकारी) शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है इसके अतिरिक्त अन्य नाम भी प्राप्त होते हैं। जैसे भागधुक(राजकीय कर को संग्रहीत करने वाला) समाहर्ता(उपहार ग्रहण करने वाला)। कृषकों तथा पशुपालको से भी कर ग्रहण किया जाता था। अर्थशास्त्र तथा युनानी लेखकों के वर्णनों से ज्ञात होता है कि किसान अपनी फसल का पच्चीस प्रतिशत कर के रूप में देते थे। परन्तु अशोक के अभिलेख से यह स्पष्ट हो रहा हैं कि उन्होंने रूम्मनदेई के निवासियों के लिए यह कर कम कर दिया था। जूनागढ़ से प्राप्त रूद्रदामन के अभिलेख में भी यह उल्लेख है कि वह कर(भूमिकर) तथा विष्टि(बेगार) से प्रजा को पीड़ित नहीं करता था।'अपीडयित्वा कर विष्टि प्रणय-क्रियाभिः। सुदर्शन झील के पुनः निर्माण के लिए प्रजापर कोई अस्थायी कर नहीं लगाया। सातवाहन राजा गौतमीपुत्र शातकर्णी के अभिलेख प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रमुख स्रोत के रूप में जाने जाते हैं। इतिहास निर्माण के लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अभिलेखों के द्वारा अनेक राजाओं की वंशावलियाँ ज्ञात होतीं हैं, साथ ही विभिन्न राजाओं के विजय वर्णन, उनका व्यक्तित्व, शासन प्रबन्ध इत्यादि अनेक विषयों पर प्रकाश पड़ता है। काल-निर्धारण में भी यह विशेष सहायक सिद्ध हुए हैं। भारत की प्राचीन भाषायें तथा लिपि भी इनकी सहायता से प्रकाश में आयीं हैं। हमारे देश में इतिहास ग्रन्थ लिखे जाने की परम्परा बहुत कम रही, यही कारण है कि यह अभिलेख भारतीय इतिहास को जानने के लिए महत्त्वपूर्ण स्रोत बने। लेखों में लिखी बातों की पुष्टि अन्य साधनों द्वारा भी हो जाती है। मुख्यतः इन पुरालेखों के आधार पर ही भारतीय इतिहास रचा गया।

विभिन्न शासकों जैसे अशोक, कनिष्क, खारवेल, शातकर्णि, रूद्रदामन, समुद्रगुप्त पुलकेशिन(द्वितीय) आदि की उपलब्धियों, यश, शक्ति इत्यादि का ज्ञान भी इन अभिलेखों के द्वारा ही संभव हो पाया है। जैसे कौटिल्य के

अर्थशास्त्र में उल्लिखित बातों की प्रमाणिकता सम्राट अशोक के अभिलेखों से सिद्ध हो चुकी है। रघुवंश मे वर्णित विजय-यात्रा की पुष्टि हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति से होती है। हर्ष के अभिलेखों से महाकवि बाणभट्ट के'हर्षचरितम् के वर्णनों की पुष्टि होती है। अभिलेखों के कारण ही प्राचीन भारत का इतिहास आधुनिक वैज्ञानिक स्तर पर भी प्रामाणिक सिद्ध हो सका है।

अभिलेखों में वर्णित राजाओं की वंशावलियाँ, युद्ध-वर्णन, राज्य-सीमायें, शासन-प्रणाली, कर व्यवस्था इत्यादि इनके ऐतिहासिक महत्त्व को प्रकट करते हैं।

(i) राजाओं की वंशावलियाँ- अभिलेखों के द्वारा तत्सम्बन्धित राजाओं की वंशावलियाँ ज्ञात होतीं हैं। अधिकांशतः जिस राजा के राज्यकाल में अभिलेख उत्कीर्ण होते थे, उस शासक की सम्पूर्ण वंश परम्परा का उल्लेख किया जाता था। सर्वप्रथम यह 150 ई. के जूनागढ़ से प्राप्त रूद्रदामन के अभिलेख मे दृष्टिगत होता है।

स्वामिचष्टनस्य पौत्रस्य राज्ञः क्षत्रपस्य सुगृहीतनाम्नः स्वामिजयदाम्नः पुत्रस्य राज्ञो महाक्षत्रपस्य रूद्रदाम्नः ।

गुप्तकालीन अभिलेखों में भी वंश-परम्परा बतलाई गई है। उदाहरणार्थ समुद्रगुप्त के प्रयागस्तम्भ लेख तथा स्कन्दगुप्त के स्तम्भ-लेख में गुप्तवंशावली प्राप्त हो रही है।— नामतः "महाराज श्रीगुप्तप्रपौत्रस्य, महाराज श्रीघटोत्कचपौत्रस्य, महा राजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्तस्य कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराजश्री समुद्रगुप्तस्य-पुत्र-तत्परिगृहीतो महादेव्या ध्रुवदेव्यामुत्पन्नस्य परमभागवतो महा राजधिराज श्रीकुमारगुप्तस्य प्रथितविपूलधामा स्कन्दगुप्तः।

युद्ध अथवा विजयवर्णन:

अभिलेखों में अनेक राजाओं के विजय वर्णन प्राप्त होते हैं तथा उन्होंने किन-किन राजाओं को युद्ध में परास्त किया इसका भी ज्ञान होता है। उदाहरणतः रूद्रदामन के गिरनार अभिलेख में यह स्पष्ट वर्णन मिलता है कि उन्होंने यौधेयों का उत्सादन किया था, तथा दक्षिण भारत के शातकर्णि पर दो बार विजय प्राप्त कर उन्हें मुक्त भी कर दिया था। मेहरौली के लौहस्तम्भ लेख

में भी राजा चन्द्र द्वारा बंग देश के समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने का वर्णन है, साथ ही वाहिक देश को जीते जाने का उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त की दिग्विजय का विस्तृत वर्णन है।

1163 ई. के टोपरा अभिलेख में चाहमान वंश के राजा बीसलदेव की विजय का वर्णन आलंकारिक शैली में हुआ है—

ओं।। अम्भो नाम रिपुप्रियानयनयोः प्रत्यर्थिदन्तान्तरे
प्रत्यक्षाणि तृणानि वैभवमिलत्काष्ठं यशस्तावकम् ।

मार्गों लोकविरूद्ध एव विजनः शून्यं मनो विद्विषाम् ।
श्री मद्विग्रहराजदेव!भवतः प्राप्ते प्रयाणोत्सवे ।।

सम्राट अशोक के तेरहवें शिलालेख से ही यह ज्ञात हो पाया कि कलिंग युद्ध के पश्चात् ही वह अहिंसा के मार्ग की ओर अग्रसर हुए तथा बौद्ध धर्म को अपनाया था। नासिक से प्राप्त लेखों में सातवाहन राजा गोतमीपुत्र शातकर्णि तथा क्षत्रप नहपान के युद्ध का उल्लेख है, जिस युद्ध में शातकर्णि को विजय प्राप्त हुई थी उनके द्वारा नहपान के दस हजार चांदी के सिक्कों को पुनः मुद्रित करवाया गया था, जोकि इस विजय की पुष्टि करता है।

राज्य सीमाएँ-इन प्राचीन अभिलेखों के द्वारा प्राचीन शासकों की राज्य सीमाओं के विषय में भी ज्ञात होता है। यह अभिलेख राज्य सीमाओं पर खुदवाने का विशेष महत्त्व था। सम्राट अशोक के अभिलेखों से यह ज्ञात होता है कि भारत के अधिकांश भाग पर मौर्य शासन रहा था। पश्चिमी दिशा में अफिगानिस्तान से उड़ीसा पर्यन्त तथा हिमालय की तराई(नेपाल इत्यादि) से मद्रास तक उनका राज्य विस्तृत था।(चोल, पांडय, केरल आदि राज्यों को छोड़कर समस्त भारत पर उनका शासन था। मौर्य शासकों के पश्चात् सातवाहन वंश का राज्य विस्तार भी इन अभिलेखों द्वारा ज्ञात होता है। सांची के दक्षिण तोरण द्वार पर शातकर्णी राजा का नाम खुदा है। हाथीगुम्फा अभिलेख में उन्हें पश्चिम दिशा का शासक कहा गया है। इन अभिलेखों में गुप्तवंशी राजाओं की दिग्विजय तथा राज्य विस्तार का उल्लेख भी प्राप्त होता है। जैसे प्रयाग स्तम्भ अभिलेख से स्पष्ट होता है कि समुद्रगुप्त ने दिग्विजय प्राप्त कर, उन राजाओं को कर से मुक्त कर दिया था—दक्षिणापथ राजग्रहण मोक्ष।

उत्तर भारत के उत्तरप्रदेश में मथुरा तक उनका राज्य था। चन्द्रगुप्त द्वितीय के सांची तथा उदयगिरी लेख इस बात को सूचित करते हैं मालवा उनके अधिकार क्षेत्र में था। जूनागढ़ के शिलालेख द्वारा सौराष्ट्र पर गुप्त शासक स्कन्दगुप्त के शासन के विषय में ज्ञात होता है।

शिलालेखों का भौगोलिक महत्त्व:

अभिलेखों के द्वारा प्राचीन भारत का पुष्ट इतिहास तो ज्ञात होता ही है साथ ही उनके अध्ययन से भूगोल का परिज्ञान भी हो जाता है। प्राचीन भारत का भूगोल जानने के लिए अभिलेखों से अत्यधिक सहायता मिलती है। विभिन्न लेखो में वर्णित मार्ग, नगर, यातायात तथा विजय की चर्चा से भौगोलिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। इन लेखों के प्राप्ति स्थान से विभिन्न साम्राज्यों की सीमाओं का ज्ञान होता हैं। राजाओं की विजय-यात्रा के मार्ग यातायात तथा व्यापारिक रास्तों से परिचय करवाते हैं। दान का उल्लेख करते समय नदियों तथा उनके तटों पर स्थित नगरों का वर्णन भी प्राप्त होता है। यद्यपि अभिलेखों में स्पष्ट रूप से भौगोलिक वर्णन उपलब्ध नहीं होता, परन्तु अन्य सम्बन्धित प्रमाणों द्वारा भौगोलिक स्थित का ज्ञान हो जाता है।

जिस प्रकार सम्राट अशोक के अभिलेख में तोसली, उज्जयिनी तथा तक्षशिला स्थानों के नामोल्लेख हुए हैं। तोसली वर्तमान धौली(भुवनेश्वर के समीप, उड़ीसा) को माना जाता है।

खारवेल राजा के हाथी गुम्फा अभिलेख में कलिंगनगर का नामोल्लेख हुआ है। खारवेल राजा ने वहाँ की मरम्मत करवाई थी। आज यह स्थान भुवनेश्वर के समीप खुदाई से प्राप्त शिशुपालगढ़ नाम से जाना जाता है, बेसनगर से प्राप्त स्तम्भ लेख में हेलियोडोरस नामक यवन दूत का उल्लेख है, जो कि तक्षशिला से सम्बन्ध रखता है। अंतिलिकित नामक युनानी राजा का वहाँ पर शासन था। उस समय तक्षशिला एक प्रमुख प्रशासनिक केन्द्र था। अभिलेखों द्वारा ही ज्ञात होता है कि कुषाण राजा कनिष्क का राज्य काशी तक विस्तृत था। उनके सारनाथ की बुद्ध प्रतिमा लेख में बनारस का प्राचीन नाम'वाराणसी का उल्लेख है"—बोधिसत्वो छत्रयष्टि प्रतिष्ठापितो वाराणसिये"। रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख में भी अनेक स्थानों का नामोल्लेख हुआ है जैसे सुराष्ट्र (सौराष्ट्र) कच्छ आनर्त(उत्तरी काठियावड़), अवन्ती(मालवा प्रदेश) इत्यादि।

अशोक तथा गुप्त सम्राटों के अभिलेखों से दक्षिण भारत के राज्य तथा नगरों के नाम ज्ञात हो जाते हैं। अशोक के तेरहवें शिलालेख में कलिंग(उड़ीसा) प्रांत के विजय का उल्लेख है। तथा आंध्र प्रदेश का भी वर्णन प्राप्त होता है। गुप्तकाल के अभिलेखों में भी अनेक प्रदेशों का नामोल्लेख हुआ है। जैसे चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा काकनाड़ नामक स्थान विजित किया गया था जो कि सांची का ही प्राचीन नाम है। इसी प्रकार मन्दसोर अभिलेख में दो प्रधान व्यापारिक नगरों लाट(दक्षिण काठियावाड़) तथा दशपुर(मालवा) का उल्लेख हुआ है। व्यापारिक संघ द्वारा दशपुर को अपना व्यापार का स्थान बनाया गया। गुप्त राजाओं के लेखों मे उत्तर तथा दक्षिण भारत के अनेक नगरों के नाम प्राप्त होते हैं। जैसे मेहरौली अभिलेख में सप्तसिन्धु नाम से पंजाब का उल्लेख हुआ है-यह पंजाब की शतद्रु, विपाश, इरावती, चन्द्रभागा, वितस्ता पूर्व की पाँच नदियाँ तथा कुंभा एवं सिन्धु पश्चिम की।"तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता वाह्लीका"। महाभारत में भी वाहीक(वाह्लीक) पंजाब के पूर्वी भाग के लिए प्रयुक्त हुआ है।

नदियों तथा पर्वतों का वर्णन:

अभिलेखों के द्वारा तत्कालीन पर्वतों एवं नदियों के नाम तथा उनकी स्थिति के विषय में ज्ञात होता है। यह पर्वतों एवं नदियों के नाम अभिलेखों में भिन्न-भिन्न प्रसंगों में प्राप्त होते हैं। सम्राट अशोक ने बराबर(गया, बिहार) की पहाड़ियों में गुफा खुदवायी तथा भिक्षु संघ को दान में दी थी, बराबर पर्वत का उल्लेख प्राप्त होता है।

"कुभा खलितक पवतसि दिना आजीविकेहि।"

इसी प्रकार सातवाहन नरेश पुलमावि के नासिक अभिलेख में गौतमीपुत्र शातकर्णी को विन्ध्या(विन्ध्य) अरावली(परियातु), सह्याद्रि(सह्य अर्थात पश्चिमी घाट), महेन्द्र(पूर्वी घाट) एवं मलय(मलयाचल), कृष्णागिरी(बम्बई के समीप) इत्यादि का स्वामी कहा गया है अर्थात् वह सम्पूर्ण दक्षिणी पठार पर शासन कर रहा था। गुप्त अभिलेखों में महेन्द्रगिरी पर्वत का नामोल्लेख हुआ है, जिसकी समानता पूर्वी घाट से की जाती है। गुप्तकालीन दशपुर के अभिलेख में दशपुर की तुलना कैलाश पर्वत से की गई है। पुलेकेशिन् द्वितीय के अयहोल लेख में विन्ध्याचल पर्वत का उल्लेख है। नासिक के लेख में

त्रीरश्मि पर्वत का ना म आता है"—त्रीरश्मिषु पर्वतेषु धर्मात्मना इदं त्रेणं कारित"(नासिक लेख)। इसी प्रकार रूद्रदामन के गि रनार अभिलेख में काठियावाड़ के उर्जयत पर्वत का उल्लेख प्राप्त होता है।

"गिरेरूर्जयतः सुवर्णसिकता पलाशिनी प्रभृतीनां नदीनां।"
(जूनागढ का शिलालेख)

नदियों के नामों का उल्लेख अभिलेखों में अधिकांशतः ती र्थ स्थानों तथा राजनैतिक प्रसंगवश हुआ है। क्षत्रप नहपान के नासिक गुहालेख के अनुसार उनके जामाता ऋषभदत्त ने तीर्थाटन के कारण अनेक नदियों पर मार्गों को'कर से मुक्त कर दिया था। इस कार्य को शुल्कतर कहा गया है। अर्थात् नदी को पार करने में किसी प्रकार का शुल्क न लगे। "हवा-पारदा-दमणा-ताषी—करवेणा-दाहनुका नावा पुण्यन्तर-कोण(नासिक गुहालेख)। रूद्रदामन के जूनागढ़ लेख में सुवर्णसिकता तथा पलाशिनी नदियों के ना म मिलते हैं। महरौली स्थित लौहस्तम्भ लेख में भी सि न्धु नदी के सातमुखों(सहायक नदियों) का वर्णन है"—तीर्खा सप्तमुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता वाह्लीकाः"। यहां सहायक नदियों के रूप में झेलम, चिनाव, रावी, व्यास, सतलुज, काबुल तथा स्वात का विवरण प्रस्तुत कि या गया है। इस प्रकार अभिलेखों द्वारा विभिन्न परिस्थितियों के कारण अनेक पर्वतों एवं नदियों के नामोल्लेख प्राप्त होते हैं।

निष्कर्ष

अभिलेख विभिन्न विधाओं से सम्बन्धित सामग्रियों के ज्ञान में सर्वोपरि हैं। वे अपने समकालीन इतिहास, भौगोलिक स्थिति, धार्मिक स्थिति, साहित्यिक स्तर तथा विभिन्न राजाओं की प्रशासनिक— व्यवस्था का ज्ञान कराते हैं ।सर्वप्रथम अभिलेखों से प्राप्त होने वाली ऐतिहासिक सामग्रियों के विषय में ज्ञान होता है । यह सामग्री पुरातत्त्व की अन्य सामग्रियों से महत्त्वपूर्ण है। इन पुरालेखों से विभिन्न राजवंशों की वंशावलियाँ प्राप्त होतीं हैं, साथ ही राजाओं की शासन व्यवस्था, कर-व्यवस्था, उनकी रा ज्य-सीमाओं का भी ज्ञान होता है। यह अभिलेख तत्कालीन भारत की भौगोलिक स्थिति भी प्रस्तुत करते हैं। विभिन्न नगरों की स्थिति तथा तत्कालीन ना म, नदियों तथा पर्वतों का उल्लेख, व्यापारिक मार्गों का उल्लेख भी प्रा प्त होता है। इस प्रकार हम कह

सकते हैं कि भारतीय ज्ञान परम्परा और सं स्कृत अभिलेख हमें प्राचीन भारतीय ज्ञान, संस्कृति, और सभ्यता के बारे में जा नकारी प्रदान करते हैं। ये अभिलेख हमें जीवन के उद्देश्य, आत्मा, और परमात्मा के बारे में चर्चा करने का अवसर प्रदान करते हैं। हमें इन अभिलेखों का अध्ययन करना चाहिए और भारतीय ज्ञान परम्परा को जानना चाहिए।

सन्दर्भ सूची:

1. उपाध्याय, वी०-प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1961.
2. उपाध्याय, वासुदेव-प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1961.
3. उपाध्याय, वासुदेव—गुप्त साम्राज्य का इतिहास(भाग-1, 2), इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद, 1939.
4. ओझा, गौरीशंकर—प्राचीन भारतीय अभिलेख, भारतीय कला प्रकाशन, दिल्ली, 2006.
5. ओझा, पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द्र—सौलंकियों का प्राचीन इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2001.
6. ओमप्रकाश—प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम मण्डल, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1978.
7. कुमारी, रेणुका—चालुक्य और उनकी शासन व्यवस्था, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1989.
8. कीथ, ए. बी.—हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिट्रेचर, लंदन, ऑक्सफोर्ड, 1928.
9. दास, एस. के.इकानॉमिक हिस्ट्री ऑफ ऐन्शिएंट इं डिया, हावड़ा, कलकत्ता, 1925.
10. राय, उद्यनारायण—गुप्त राजवंश और उसका युग, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1977.

11. शरण, आर.—भारतीय सभ्यता और संस्कृति का इतिहास, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2002.

12. सरकार, डी. सी.एपिग्राफिकल ग्लॉसरी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1966.

13. संकलिया, एच. डी.—आर्कियोलॉजी ऑफ गुजरात, नटवरलाल एण्ड कंपनी, बम्बई, 1941.

14. सैनी, रणजीत सिंह—अभिलेख मञ्जुषा, न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, दिल्ली, 2000.

15. सहाय, शिवस्वरूप भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1950.

16. सिंह, आनन्द शंकर—भारत की प्राचीन मुद्राएं, शा रदा पुस्तक भण्डार, इलाहाबाद, 1998.

17. सिंह, पारसनाथ—हर्षकालीन समाज, भारतीय पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1971.

18. सोमपुरा, कंठीलाल एफ. द स्ट्रक्चरल टे म्पल्स ऑफ गुजरात, गुजरात यूनिवर्सिटी, अहमदाबा 1968.

19. झा, डी. एन.—प्राचीन भारत: एक रूपरेखा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1993.

20. जैन, हीरालालभारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद्,

21. शर्मा, आर.एस.—प्राचीन भारत, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1970.